



अध्याय १

# सैन्य-दर्शन



धृतराष्ट्र उवाच ।  
 धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।  
 मामकाः पाण्डवाश्वैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ १-१ ॥

महाराज धृतराष्ट्र ने कहा - हे संजय! धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में बड़े उत्साह के साथ युद्ध के लिए एकत्रित होकर मेरे तथा पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया?

सञ्जय उवाच ।  
 द्वाष्टा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।  
 आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ १-२ ॥

संजय ने उत्तर दिया - हे महाराज! पाण्डव-सेना की व्यूहरचना को परखकर आपके पुत्र दुर्योधन अपने गुरु द्रोणाचार्य के निकट गए, और कहे -

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।  
 व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ १-३ ॥

हे महान आचार्य! उस ओर देखिए, आपके मेधावी शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा संगठित, महान पाण्डव-सेना की व्यूहरचना को।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।  
 युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ १-४ ॥

उन पंक्तियों में, युद्ध में भीम तथा महान धनुर्धर अर्जुन के समान, सात्यकि, विराट और महारथी द्रुपद जैसे योद्धा उपस्थित हैं।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।  
 पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैव्यश्च नरपुञ्जवः ॥ १-५ ॥

महान योद्धा, जैसे कि धृष्टकेतु, चेकितान, काशी के वीर्यवान राजा, पुरुजित, कुन्तिभोज तथा शैव्य भी उपस्थित हैं।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।  
 सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ १-६ ॥

शौर्यवान युधामन्यु, साहसी उत्तमौजस, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एवं द्रौपदी के पुत्र, निस्संदेह महारथी हैं।

## श्रीमद्भगवद्गीता

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।  
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ १-७ ॥

यद्यपि, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, आपको यह भी जानना चाहिए कि हमारी सेना में कौन हमारे सैन्यबल का नेतृत्व करने के योग्य हैं। आपकी जानकारी के लिए मैं उनके नाम दोहराता हूँ।

भवान्मीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिङ्गयः ।  
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ १-८ ॥

स्वयं आप, भीष्म तथा कर्ण सदैव युद्ध में विजयी रहे हैं एवं अश्वत्थामा, विकर्ण, भूरिश्वा व जयद्रथ भी इसी तरह से विजयी रहे हैं।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।  
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १-९ ॥

ये सभी अनेकानेक अस्त्र-शस्त्रों से लैस हैं और ये युद्ध की कला में प्रवीण हैं। ये एवं कई अन्य योद्धा भी मेरे लिए अपने प्राण तक न्योछावर करने के लिए तैयार हैं।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।  
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १-१० ॥

भीष्म के पराक्रम द्वारा संरक्षित हमारा सैन्यबल असीमित है। दूसरी ओर, भीम द्वारा संरक्षित विपक्ष का सैन्यबल सीमित है।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।  
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ १-११ ॥

आपको किसी भी कीमत पर सभी सामरिक बिंदुओं में, भीष्म की सहायता एवं उनको संरक्षण प्रदान करना है।

~ अनुवृत्ति ~

इस संसार में युद्ध कोई नई बात नहीं है। हजारों वर्ष पहले भी कुरुक्षेत्र जैसा युद्ध, सही और गलत के बीच की असहमति का निश्चय करने एवं लौकिक धन-

सम्पत्ति के लाभ हेतु होते थे। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक समय तक, इस धरती पर एक भी दिन ऐसा नहीं बीता है की कहीं पर किसी कारण से युद्ध न हो रहा हो। यदी हम इतिहास में देखें तो लोग धन-सम्पत्ति के लोभ एवं कीर्ति हेतु, कभी कभी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए एकत्रित हुए हैं, लेकिन अधिकतर नीचता से ही हुए हैं। यही शृंखला अब इक्षीसवीं सदी में स्वयं को दोहरा रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध मानव सभ्यता में उनके कर्मों के भाग्य का एक अपरिहार्य नियति है।

दूसरी ओर, शांति प्राप्त करना कठिन है। शांति पर चर्चा तो होती है, उसके लिए प्रार्थना भी की जाती है, किंतु कदाचित ही क्षणभर से अधिक समय के लिए उसके दर्शन होते हैं। सभी का अधिकतम जीवनकाल, भले ही वह कितने ही सरल क्यों न हो या तो अपने सामाजिक, या राजनैतिक, या आर्थिक, या मानसिक, या शारीरिक अस्तित्व को बनाए रखने के संघर्ष में ही कट जाता है। लगभग सभी के लिए, किसी भी बड़े संकटकाल की अल्पकालिक अभाव ही शांति कहलाती है। परन्तु शांति तो प्रज्ञा की एक अवस्था है, ना कि इस भौतिक जगत के बाहरी मामलों से संबंधित कोई दशा। शांति तो एक आंतरिक अनुभूति होती है।

**वेद-शास्त्रों की प्रज्ञता - श्रीमद्भागवतम्** में कहा गया है, जीवो-जीवस्य-जीवनं - एक जीव दूसरे जीव का आहार बनता है। अत्यंत आणविक जीव-राशियों से लेकर सबसे विकसित जीव-राशियों तक, एक जीव का पोषण किसी अन्य जीव के विनाश से ही होता है। अतएव, भौतिक अस्तित्व का आधारभूत सिद्धांत ही मुलतः हिंसाग्रस्त होने के कारण दोषपूर्ण है। अतः शांति, लगभग हम सभी के लिए, अपने निर्दिष्ट कार्य के निर्वाह से, तथा इस विश्वास से प्राप्त होती है कि हमने जो किया, वह सही किया। इसी विचार में युद्ध और शांति के बीच का सूक्ष्म भेद निहित है - जिसे हम सही मानते हैं, या जिस विचार को मानने के लिए हम अनुकूलित हैं, दरसल क्या वह सही है?

सही और गलत, या कुछ मामलों में पुण्य और पाप में अंतर पहचानने की क्षमता, व्यापक रूप से हमारे ज्ञान के विस्तार पर आधारित होती है जहाँ से हम अपने निष्कर्ष निकालते हैं। स्वाभाविक है कि अपर्याप्त जानकारी हमें गलत निष्कर्ष पर पहुंचाती है। इसलिए ज्ञान के महत्तम स्रोत को खोज निकालना, परम सत्य के ज्ञान को खोज निकालना और उस ज्ञान की साधना करना ही हमारे परम हित में है।

## श्रीमद्भगवद्गीता

सारे विश्व में भगवद्गीता ही संभवतः व्यापक रूप से सबसे अधिक पठित ईश्वरवाद् पर आधारित ग्रन्थ है। जो कुछ भी ज्ञान हम अन्य सदृश ग्रन्थों, जैसे कि धर्मपद, बाइबल, तोराह, कुरान आदि में प्राप्त कर सकते हैं, वह सब कुछ भगवद्गीता में भी उपलब्ध है। किंतु भगवद्गीता में ऐसा ज्ञान भी है जिसे और कहीं भी पाया नहीं जा सकता। अतएव भगवद्गीता, ज्ञान के सभी अन्य शाखाओं से उत्कृष्ट है। आगे इन अनुवृत्तियों में भगवद्गीता में निहित परम सत्य के ज्ञान की विस्तीर्णता की एक झलक प्रस्तुत की गई है।

**तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।  
सिंहनादं विनद्योचैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १-१२ ॥**

तत्पश्चात्, कुरुवंश के पितामह भीष्म ने दुर्योधन का उत्साह बढ़ाने के लिए, सिंह कि भाँति दहाड़ते हुए अपने शंख को ऊचे स्वर में बजाया।

**ततः शङ्खश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।  
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १-१३ ॥**

उस समय, शंख, नगाड़े, ढोल एवं तुरहियां एक साथ बज उठे, और उनकी सम्मिलित ध्वनि आकाश में गूँजने लगी।

**ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।  
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥ १-१४ ॥**

युद्धभूमि के दूसरी ओर, श्वेत वर्णीय सुंदर अश्वों से जुड़े हुए भव्य रथ पर विराजमान, माधव श्री कृष्ण और अर्जुन दोनों ने अपने अपने दिव्य शंखों को बजाएं।

**पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।  
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १-१५ ॥**

हृषीकेश श्री कृष्ण ने पाञ्चजन्य नामक शंख को बजाया। धनञ्जय अर्जुन ने देवदत्त नामक शंख को बजाया। वृकोदर भीम ने पौण्ड्र नामक शंख को बजाया।

**अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १-१६ ॥**

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।  
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १-१७ ॥  
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।  
सौभद्रश्च महाबाहुः शश्वान्दमुः पृथक्पृथक् ॥ १-१८ ॥

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने अनन्तविजय नामक शंख को बजाया। नकुल और सहदेव ने अपने अपने शंख सुधोष व मणिपुष्पक को बजाए। हे राजन, महान धनुर्धर काशिराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, अजेय सात्यकि, द्रुपद, द्रौपदी के पुत्र, तथा सुभद्रापुत्र पराक्रमी अभिमन्यु समेत सभी ने अपने अपने शंखों को बजाए।

स धोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदास्यत् ।  
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलोऽभ्यनुनादयन् ॥ १-१९ ॥

आकाश एवं धरती में गूंजती हुई इस ध्वनि-उद्घोष के कारण धृतराष्ट्र के पुत्रों के हृदय विदीर्ण हो गए।

~ अनुवृत्ति ~

कुरुक्षेत्र युद्ध के आरंभ में ही दुर्योधन ने अपने विरोधियों के बल का कम आकलन कर एक सामरिक भूल की। संभवतः राज्य प्राप्ती के लोभ से अंधे होकर, या चचेरे भाईओं पाण्डवों से अपने पुराने द्वेष के कारण, वह इस युद्ध में यह सोचकर सम्मिलित हुआ कि उसके विरोधियों का बल काफी सीमित है।

निस्संदेह, द्वेष और लोभ विवेक के अमंगलकारी साथी हैं, जिसके द्वारा गलत निष्कर्ष होते हैं एवं जीवन की निरर्थक क्षति होती है। उदाहरण के तौर पर, आधुनिक समय में वियेतनाम, इराक़, और अफगानिस्तान के युद्ध से बेहतर अन्य कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता, जहां पर जनता की इच्छा को अनदेखा कर असंरक्ष्य निरपराध प्राणों का नुकसान हुआ।

भगवद्गीता के सभी पारम्परिक टीकाकारों ने कुरुक्षेत्र में दुर्योधन के इस भूल को दर्शाया है। विशेषतः उन्होंने यह सूचित किया है कि दुर्योधन ने यह नहीं पहचाना कि जब परम-पुरुष श्री कृष्ण ही स्वयं अर्जुन का मार्गदर्शन करने के लिए उनके सारथी बने हैं, तो अर्जुन अवश्य ही सबसे दुर्जय प्रतिद्वंद्वी होगा।

इतिहास इस बात को दर्शाता है कि युद्ध लोभ, द्वेष, या मजहबी मतभेदों के कारण किए जाते हैं। किन्तु यह सोचना कि “ईश्वर हमारी ओर हैं”, यह केवल एक सहूलियत की बात है। यह विचार कि “ईश्वर हमारी ओर हैं”, अवश्य एक सांत्वना देनेवाला विचार है, और फौजों ने इसी सांत्वना के बलबूते पर ही अब्राहमिक धर्मों के अन्युदय के समय से लेकर आज तक लगभग सभी युद्धों में युद्ध की है। हालाँकि समस्या सर्वदा यही रही है कि इन सभी युद्धों में दोनों पक्ष धार्मिकता का झंडा उठाकर बस यही ठान लेते हैं कि “यह ईश्वर की इच्छा है!” इस चित्तवृत्ति को कभी कभी “सुगमता का सिद्धांत” या “Theology of convenience” कहा जाता है।

इस तरह के मत-प्रचार कि “स्वयं ईश्वर हमारे कारण के समर्थक हैं”, आज भी फौजों को उत्तेजित करने या आत्मघाती हमलावरों को भड़काने में प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। यह एक सत्य कथन है कि इतिहास के इन अंधकारमय कालावधियों में, किसी भी अन्य पृथक अप्राकृतिक दुर्घटनाओं से अधिक लोग ईश्वर के नाम पर मारे गए हैं और इसी कारण अधिक निरपराध भी मृत्यु के घाट उतारे गए हैं।

तो प्रश्न यह उठता है कि कैसे कुरुक्षेत्र का युद्ध इन आधुनिक समय के युद्धों से भिन्न है, जो या तो लोभ के कारण किए जाते हैं या धार्मिक कटूरपंथियों के बीच हुआ करती हैं? आसानी से यह कह देना कि “क्योंकि परम-पुरुष कृष्ण स्वयं पाण्डवों के समर्थक थे इसलिए अपने शत्रुओं का वध करने के लिए पाण्डव सही थे?”, क्या यह युद्धप्रियता नहीं? अंतर यह है कि कुरुक्षेत्र का युद्ध इसलिए नहीं हुआ था कि एक पक्ष का धार्मिक मत दूसरे से भिन्न था। कुरुक्षेत्र एक भ्रात्रघातक युद्ध था - सत्ता का लोभ, धर्म का उल्लंघन, ईर्ष्या, पारिवारिक बंधन, और स्वयं को केवल एक स्थूल शरीर समझ लेना, आदि जैसे मानुषिक दोषों के माध्यम से उत्पादित एक कुल-वैर था।

किंतु इतिहास के किसी भी अन्य युद्धों के विपरीत कुरुक्षेत्र का युद्ध सभी भावी पीढ़ियों की भलाई के लिए एक अगाध सबक दर्ज कर गया है। यह सबक श्री कृष्ण ने भगवद्गीता के रूप में सिखाया है - ऐसा सबक जो मानवजाति को अपने सांसारिक कमजोरियों को अभिभूत करने, अलौकिक स्थिति पर प्रतिष्ठित होने व आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ती के योग्य बनाता है।

## अध्याय १ – सैन्य-दर्शन

अथ व्यवस्थितान्दृष्टा धार्तराष्ट्रान् कपिघजः ।  
 प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ।  
 हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते । १-२० ॥

धृतराष्ट्र से संजय ने कहा - हे राजन, जैसे ही युद्ध आरंभ होनेवाला था, आपके पुत्रों को युद्ध के लिए तैयार देख, हनुमान के पताके से सुसज्जित रथ पर विराजमान अर्जुन ने अपना कमान को उठाया और हृषीकेश श्री कृष्ण से इस प्रकार से कहा -

अर्जुन उवाच ।  
 सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ १-२१ ॥  
 यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।  
 कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ १-२२ ॥

अर्जुन ने कहा, हे अच्युत, मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में ले चलिए, ताकि मैं उन योद्धाओं को देख सकूँ जिनसे मुझे युद्ध है।

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।  
 धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेयुद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ १-२३ ॥

युद्धभूमी पर एकत्रित हुए उन सभी योद्धाओं को मुझे देखना है, जो धृतराष्ट्र के दुष्ट पुत्र दुर्योधन को प्रिय हैं।

सञ्जय उवाच ।  
 एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।  
 सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ १-२४ ॥

संजय ने कहा, हे भारत, उनकी विनती पर श्री कृष्ण, अर्जुन के भव्य रथ को दोनों सेनाओं के मध्य ले गए।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।  
 उवाच पार्थं पश्यैतान्समवेतान्कुरुनिति ॥ १-२५ ॥

भीष्म, द्रोण एवं विश्व के सभी अन्य सेनानायकों के समक्ष, श्री कृष्ण ने कहा - हे पार्थ, इस रणभूमि में एकत्रित हुए कुरु राज-परिवार को देखो!

## श्रीमद्भगवद्गीता

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितृनथं पितामहान् ।  
आचार्यान्मातुलान्न्द्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।  
श्वशुरान्सुहृदश्वैव सेनयोरुभयोरपि ॥ १-२६ ॥

दोनों सेनाओं के मध्य, अर्जुन ने पितातुल्य परिजन, पितामह, गुरुजन, मामा, भाई, बेटे, पोते, ससुर और बंधुजनों को गौर से देखा।

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ।  
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥ १-२७ ॥

युद्धभूमि में अपने समक्ष सगे-संबंधियों को देखकर, कुन्तिपुत्र अर्जुन, दुख एवं करुणा के कारण शोकाकुल हो गया।

अर्जुन उवाच ।  
दृष्टेमं स्वजनं कृष्णं युयुत्सुं समुपस्थितम् ।  
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुद्ध्यति ॥ १-२८ ॥

अर्जुन ने कहा - हे कृष्ण, अपने सगे-संबंधियों को युद्ध के लिए तैयार देख, मेरे अंगों से मेरा बल क्षीण हो रहा है, और मेरा मुंह सूख रहा है।

~ अनुवृत्ति ~

श्री कृष्ण अर्जुन के रथ के सारथी बने इस लिए उन्हें पार्थसारथी के रूप में भी जाना जाता है। चूंकि कृष्ण अर्जुन के मित्र व साथी थे, अर्जुन ने कृष्ण से अपने रथ को दोनों सेनाओं के मध्य ले जाने का अनुरोध किया, ताकि वह यह देख सके कि उसे किसके विरुद्ध युद्ध करना है। परन्तु शत्रु को अपने समक्ष देखते ही अर्जुन अचंभित हए और भ्रांति में पड़ गए।

कुरुक्षेत्र का मंच अब तैयार हो चुका था जहां से श्री कृष्ण भगवद्गीता का उपदेश देने वाले थे- दुःख से अभिभूत अर्जुन, अपने कर्तव्य से विचलित हो चुके थे। क्षत्रिय होने के कारण अर्जुन युद्ध के लिए कर्तव्यबद्ध थे, किंतु अपने समक्ष खड़ी विपत्ति को देखकर वह आगे न बढ़ सके।

यह संसार दोष, खतरों, दुर्घटनाओं, शोषणकारी कूर व घृणास्पद योजनाओं आदि जैसे अन्य बहुत से समरूप लक्षणों से भरपूर है, जिन्हें आप अवश्य अशुभ ही कहेंगे। आयरलैंड के राजनीतिज्ञ व तत्त्वज्ञ एडमंड बर्क ने कहा है,

“पाप का विजयी होने का एक ही कारण है, और वह है कि अच्छे लोगों का चुपचाप देखते रह जाना और विरोध में कुछ न करना।”

अर्जुन ने मन ही मन में युद्ध न करने की ठान ली थी, यह सोचकर कि कुल के नाश का अर्थ है परंपरा का नाश, अधोगति का आगमन, अनिष्ट संतानोत्पत्ति इत्यादि जिनका परिणाम केवल अशुभ ही हो सकता है। किंतु अंदर ही अंदर अर्जुन यह जानते थे कि कुछ न करने से भी इसका परिणाम दुष्कर ही होगा।

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।  
गाण्डीवं स्नासते हस्तात्त्वक्वैव परिदद्यते ॥ १-२९ ॥

मेरे शरीर में कंपन हो रहा है, मेरे रोंगटे खड़े हो गए हैं, मेरी त्वचा जल रही है, और गांडीव से मेरा पकड़ फिसल रहा है।

नच शक्रोम्यवस्थातुंभ्रमतीव च मे मनः ।  
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥ १-३० ॥

हे कृष्ण, हे केशव, मेरा मन भ्रमित हो गया है, मैं धैर्य नहीं रख पा रहा हूँ, और मुझे अशुभ लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं।

नच श्रेयोऽनुपश्यामि हृत्वा स्वजनमाहवे ।  
न काक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ॥ १-३१ ॥

हे कृष्ण, इस युद्धभूमि में अपने स्वजनों का वध कर, कोई लाभ दिखाई नहीं देता। ना तो मुझे विजय की इच्छा है, न ही राज्यसुख के भोग की।

किं नो राज्येन गोविन्दं किं भोगैर्जीवितेन वा ।  
येषामर्थं काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥ १-३२ ॥  
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यत्त्वा धनानि च ।  
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ॥ १-३३ ॥  
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ।  
एतान्न हन्तुमिच्छामि न तोऽपि मधुसूदन ॥ १-३४ ॥

हे गोविन्द, जिनके लिए हम राज्य, सुख या जीवन की कामना करते हैं, जब वे ही हमारे विरुद्ध इस युद्धभूमि में एकत्रित हो जाते हैं, तो इनका क्या मोल रह जाता है? राज्य और उसके भोग का क्या उपयोग जब जिनके लिए हम इन

## श्रीमद्भगवद्गीता

सब की कामना करते हैं - हमारे गुरुजन, अग्रज, पुत्र, पितामह, मामा, ससुर, पोते, बहनोई और अन्य सगे-संबंधी जो इस रणभूमि में उपस्थित हैं - वे स्वयं इस युद्ध में अपने राज्यों एवं प्राणों को जोखिम में डालने के लिए तत्पर हैं? हे मधुसूदन, यदि वे मुझे मारना भी चाहें, तो भी मुझे उनका वध करने की कोई इच्छा नहीं है।

**अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ।  
निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ॥ १-३५ ॥**

हे जनार्दन (सभी जीवों के पालनहार), इस संसार पर शासन करना तो क्या, यदि हम समस्त त्रिभुवन पर साम्राज्य पा लें, तब भी धृतराष्ट्र की संतानों का वध करके हम कैसे सुखी हो पाएंगे?

**पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ।  
तस्मान्नार्हा वर्यं हन्तुंधार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।  
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ १-३६ ॥**

हे माधव, यदि हम अपने ही सगे-संबंधियों का वध करते हैं, भले ही वे हमारे विरुद्ध क्यों न हो, तो हम पर घोर दुर्भाग्य अवश्य ही आएंगा। धृतराष्ट्र के पुत्रों एवं अपने बंधुओं का वध करना उचित नहीं है। अपने ही परिजनों का वध करके हम कैसे सुखी हो सकते?

**यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।  
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ १-३७ ॥  
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।  
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्विर्जनार्दन ॥ १-३८ ॥**

हे जनार्दन, हालांकि इन लोगों के चित्त लोभमय हैं, और इन्हें अपने ही मित्रों से कपट करने या अपने संबंधियों का वध करने में कोई दोष दिखाई नहीं दे रहा है, अतः इस परिणाम को जानते हुए भी हम ऐसे घोर कार्य में क्यों लगें?

**कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।  
धर्मे नष्टे कुलं कृत्क्षमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ १-३९ ॥**

स्वजनों के नाश से कुल की परंपरा सदैव के लिए नष्ट हो जाती है और जब रीति-रिवाज मिट जाते हैं, तो समस्त वंश में अधर्म प्रचलित हो जाता है।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।  
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्ण्यं जायते वर्णसङ्करः ॥ १-४० ॥

हे कृष्ण, हे वार्ष्णेय, जब अधर्म फैलता है तब कुल की स्त्रियां कलुषित हो जाती हैं। स्त्रियों के धर्म-पतन से अवांछित संतानों की उत्पत्ति होती है।

सङ्करो नरकायैव कुलभानां कुलस्य च ।  
पतन्ति पितरो ह्येषां लुतपिण्डोदकक्रियाः ॥ १-४१ ॥

अवांछित संतान, कुल और कुल की परंपरा के विध्वंसक, दोनों के समक्ष एक असहज स्थिती उत्पन्न करते हैं। श्राद्ध-कर्म के भंग हो जाने से उनके पूर्वजों का भी पतन हो जाता है।

दोषैरैतैः कुलभानां वर्णसङ्करकारकैः ।  
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ १-४२ ॥

कुल की परंपरा के विध्वंसक के ऐसे अनर्थकारी व्यवहार से अवांछित संतानों की आबादी बढ़ती है जो सभी पारिवारिक और सामाजिक परंपराओं को जड़ से मिटा देता है।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।  
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ १-४३ ॥

हे जनार्दन, मैंने सुना है कि जो व्यक्ति पारिवारिक, सामाजिक या आध्यात्मिक मान्यताओं का नाश करता है, वह सदा के लिए घृणित अवस्था को भुगतता है।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।  
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ १-४४ ॥

ओह! हमने कितना धोर पाप करने की ठानी है - केवल राज्यसुख भोगने के लिए अपने ही स्वजनों का वध करने चले हैं!

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।  
धार्तराष्ट्र रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ १-४५ ॥

यदि धृतराष्ट्र के पुत्र, अपने हाथों में लिए अस्त्र से, इस युद्धभूमि में मुझ निहत्ते और निर्विरोध का वध कर दें, तो उसे ही मैं बेहतर समझूँगा।

सञ्जय उवाच ।  
 एवमुत्तवार्जुनः सङ्घे रथोपस्थ उपाविशत् ।  
 विसृज्य सशरं चापं शोकसंविभ्रमानसः ॥ १-४६ ॥

संजय ने कहा - इस प्रकार कह कर अर्जुन ने अपने धनुष एवं वाणों को उतारकर रख दिया और रथ पर भारी मन से शोक में डूब कर बैठ गया।

~ अनुवृत्ति ~

आलंकरिक रूप से हम यह कह सकते हैं कि अर्जुन के 'एक ओर कुआँ था, तो दूसरी ओर खाई थी। इसलिए, अर्जुन ने समझदारी दिखाते हुए श्री कृष्ण से सलाह माँगा। यह जानते हुए कि श्री कृष्ण स्वयं परम सत्य हैं, सकल ऐश्वर्य व ज्ञान से परिपूर्ण हैं, अर्जुन ने श्री कृष्ण से अनुरोध करते हुए उन्हें उनके नामों से संबोधित किया - हृषीकेश (इन्द्रियों के स्वामी), अच्युत (अचूक), केशव (केशि दानव के संहारक), गोविन्द (इन्द्रियों को परितृप्त करनेवाले), मधुसूदन (मधु दानव के संहारक), जनार्दन (सभी जीवों के पालनहार), माधव (लक्ष्मीजी के स्वामी), एवं वार्ष्ण्य (वृष्णी वंशज)।

अर्जुन ने कृष्ण को उनके विभिन्न नामों से इसलिए संबोधित किया क्योंकि स्वयं को एक धर्म-संकट में पाकर वे कृष्ण की अनुकंपा का आह्वान करना चाहते थे। श्री कृष्ण हृषीकेश हैं, यानि वे इन्द्रियों के स्वामी हैं, अतः वे कभी भी विभ्रांत या माया-वश नहीं हो सकते। वे अच्युत हैं, अतः वे कोई स्वलून ही नहीं कर सकते और वे गलत निर्णय भी नहीं ले सकते। अर्जुन को कृष्ण की सलाह की अत्यंत आवश्यकता थी - ऐसी सलाह जिस पर वह निर्भर कर सके और जो उसके व्याकुल मन व इन्द्रियों को शांत कर सके।

श्री कृष्ण केशव हैं, केशि दानव के संहारक, जो कृत्रिम महानता की मिथ्याबोध को दर्शाता है। यह बात प्रसिद्ध है की श्री कृष्ण ने पृथ्वी पर अपनी प्रकट लीला में कई दानवों का संहार किया, और यह सभी दानव हमारे आध्यात्मिक जीवन की उन्नती में बाधा डालने वाले सभी नकारात्मक लक्षणों को दर्शाते हैं, जैसे कि नाम व यश का लालच, कुटिलता, मिथ्याभिमान, धोखेबाजी, क्रूरता, मूर्खता, हिंसा, काम, क्रोध, लोभ, मिथ्योपदेश, बुरी आदतें आदि। अर्जुन को विश्वास था कि श्री कृष्ण की शरण ग्रहण करने से उनके परिस्थिति की सभी बाधाएं दूर हो जाएंगी। कृष्ण को वृष्णी वंशज या वार्ष्ण्य के नाम से संबोधित करते हुए

## अध्याय १ – सैन्य-दर्शन

अर्जुन कृष्ण को वंशगत परंपराओं की महत्त्वता का स्मरण कराना चाहते थे, और इन्हीं परंपराओं का विनाश ही अर्जुन की सबसे बड़ी दुरिधा थी।

ॐ तत्सदिति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां  
वैयासिक्यां भीष्मपर्वाणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु  
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे  
सैन्यदर्शनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥

ॐ तत् सत् – अतः व्यास विरचित शतसहस्र श्लोकों की श्री महाभारत ग्रन्थ के भीष्म-पर्व में पाए जाने वाले आध्यात्मिक ज्ञान का योग-शास्त्र - श्रीमद् भगवद् गीतोपनिषद् में श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद से लिए गए सैन्य-दर्शन नामक प्रथम अध्याय की यहां पर समाप्ति होती है।

